भारत में प्रजातीय तत्व

(RACIAL ELEMENTS IN INDIA)

58 Siddharth Nagar Behind Giriraj Tower Bhawarkua Square Indore
9826041759 / 7509641642 / 07314006761

भारत में प्रजातीय तत्व
(RACIAL ELEMENTS IN INDIA)

भारत का प्रजातीय इतिहास अत्यधिक प्राचीन होते हुए भी यह इतना अस्पष्ट है की इससे सम्बंधित किसी निश्चत निष्कर्ष तक पहुँच सकना अत्यधिक कठिन है। जो कुछ भी प्रमाण मिले हैं उनसे इतना अवश्य हो जाता है कि यह इतिहास कम से कम ईसा के 6000 वर्ष पूर्व नव-पाषाण युग के अन्तिम समय से आरम्भ हो गया था, लेकिन उसी समय से भारत में आने वाले विभिन्न प्रजातीय समूहों के बीच मिश्रण की प्रक्रिया आरम्भ हो जाने के कारण, वास्तविक प्रजातियों के कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं होते । भारत सदैव से प्रजातियों काण एक संग्रहालय रहा है। यहाँ की भौगोलिक विशेषताएँ और जीविका के प्रचुर साधन प्रत्येक प्रजातीय समूह के लिए आकर्षण का केन्द्र बने रहे, और यही कारण हैं कि भारत में समय – समय पर आने वाली प्रजातियों की संख्या इतनी अधिक रही है कि हमारे प्रजातीय इतिहास के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी कह सकना बहुत कठिन है। भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या में यदि हम प्रजातीय तत्वों की खोज करने लगें, तब यहाँ सम्भवतः हमें उन समस्त प्रजातियों और उप-प्रजातियों का प्रतिनिधित्व मिल जायेगा, जिनका उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं। इस विविधता का कारण हम प्रजातीय मिश्रण को मानकर अक्सर अपनी जिज्ञासा को शान्त करने का प्रयत्न करते हैं लेकिन यह एक अनुमान ही है, प्रमाणित निष्कर्ष नहीं।

हमारे देश में खोजमूलक प्रवृत्ति का सदैव से अभाव रहा है। यही कारण है कि भारत में विभिन्न प्रजातियों की उत्पत्ति से सम्बन्धित जो निष्कर्ष मिलते भी हैं वे साधारणतया विदेशी मान्यताओं पर ही आधारित हैं । इसके अतिरिक्त कुछ और भी कठिनाइयाँ रही हैं जिनके कारण भारत का प्रजातीय इतिहास अभी भी एक रहस्य बना हुआ है। इनमें से कुछ प्रमुख कठिनाइयाँ इस प्रकार हैं : -

(1) **भौगोलिक कारक** - प्रजातीय इतिहास को ज्ञात करने का सबसे सरल तरीका नर-कंकालों और मानव-अस्थियों का अध्ययन करके वास्तविकता तक पहुँचना है। हमारे देश की जलवायु उष्ण है जिसमें कोई भी जैविक पदार्थ (बतहंलपब ङंजममतल्ल लम्बे समय तक सुरक्षित नहीं रह पाता । ऐसी स्थिति में नर-कंकालों तथा अस्थियों के शीघ्र ही गल जाने अथवा कीड़ो द्वारा खा लिये जाने के कारण हमें प्रजातीय इतिहास के ठोस प्रमाण नहीं मिल पाते ।

(2) **अवशेषों के प्रति उदासीनता**-प्रजातीय इतिहास से सम्बन्धित हमें जो अवशेष मिले भी है वह केवल संयोग की ही बात है ।इनमे से अधिकतर अवशेष तब मिले जब भारत में रेल की लाइनों का निर्माण हो रहा था । फलस्वरूप कितने ही महत्वपूर्ण अवशेषों को इस देश के इतिहास की सुरक्षित निधि न समझकर नष्ट कर दिया गया ।

(3) **व्यक्तिगत भ्रान्तिया** - भारत के प्रजातीय इतिहास को विभिन्न भाषा-भाषी समूहों से इस प्रकार मिला दिया गया कि अक्सर एक विशेष भाषा बोलने वाले समूह को एक भिन्न प्रजाति मान लिया गया है । इससे अनेक प्रकार की भ्रान्त धारणाओं का विकास हुआ है ।

(4) **पक्षपातपूर्ण निष्कर्ष** - जैसा कि हम कह चुके हैं, हमारे प्रजातीय इतिहास से सम्बन्धित अधिकतर अध्ययन ब्रिटिश काल में इंग्लैंड , अमरीका, फ्रांस , जर्मनी और इटली के मानवशास्त्रियों द्वारा किये गये हैं। इन सभी विद्वानों ने अपने निष्कर्ष देते समय सदैव ध्यान रखा कि भारत के प्रजातीय इतिहास से यूरोप की श्रेष्ठता पर कोई आंच न आने पाये । इस कथन की प्रामाणिकता को हम आगामी विवेचन में स्पष्ट करेंगे, यहाँ पर केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इस पक्षतापूर्ण मनोवृत्ति से हमारे देश का प्रजातीय रहस्य सुलझने की जगह और अधिक उलझ गया ।

(5) **सांस्कृतिक परम्परा** - यद्यपि इस सत्य की उपेक्षा की गयी है लेकिन यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि भारत में ईसा के 3000 वर्ष पूर्व से ही मृत व्यक्ति का दाह-संस्कार करने का प्रचलन रहा है। शव को केवल जलाया ही नहीं जाता बल्कि उसकी अस्थियाँ भी किसी

नदी या सरोवर के जल में डाल दी जाती हैं। जिन देशों में मृत-शरीर को जमीन में गाढ़ने की प्रथा है वहाँ हजारों वर्ष पूर्व के भी कंकाल और हड्डिया सुरक्षित मिल जाती हैं, जबकि भारत में उपर्युक्त कारण से ऐसे प्रमाणों का नितान्त अभाव रहा है।
इन समस्त कठिनाइयों के बाद भी भारत में प्रजातीय तत्वों की खोज करने में जो प्रगति हुई है, उसका यहाँ पर संक्षेप में उल्लेख किया जा सकता है।

भारत में प्रजातियों का इतिहास

(HISTORY OF RACES IN INDIA)

भारत में प्रजातीय इतिहास अनेक भ्रान्तियों और अपुष्ट निष्कर्षो के कारण अभी भी अन्धकारमय है। सन् 1922 में मोहनजोदड़ो की खोज से पहले हमारे प्रजातीय इतिहास के बारे में जो कुछ भी ज्ञात हो सका वह अत्यधिक अपर्याप्त था। इसका प्रमुख कारण प्रजातियों से सम्बन्धित किन्हीं भी लिखित प्रमाणों का अभाव होना था। इसके उपरान्त भी हमें इस जटिल समस्या का समाधान करना है कि भारत में विभिन्न प्रजातियों की उत्पत्ति किस प्रकार हुई और सभ्यता के इतिहास में उन्होंने क्या योगदान दिया। इस क्रम में प्रजातीय इतिहास को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है - (क) प्रागैतिहासिक युग, तथा (ख) ऐतिहासिक युग, जिनका यहाँ पर हम संक्षिप्त विवरण देंगे।

प्रागैतिहासिक युग

(PRE-HISTORIC AGE)

जैसा कि हम स्पष्ट कर चुके हैं, भारत में उष्ण जलवायु, प्रजातीय इतिहास के प्रति उदासीनता और अनेक सांस्कृतिक परम्पराओं के कारण, यहाँ का प्रागैतिहासिक युग अत्यधिक अस्पष्ट हैं। इस युग की जानकारी देने वाले जो तथ्य मिले भी हैं उनकी संख्या इतनी कम है की **डॉ. मजूमदार** के अनुसार, "उन्हें एक छोटे से डाक - टिकट के पीछे ही लिखा जा सकता है" प्रागेतिहासिक युग में सांस्कृतिक विकास के दृष्टिकोण से दो युग विशेष रूप से महत्वपूर्ण रहे हैं। पहले को हम पाषाण युग और दूसरे को नव-पाषाण युग कहते हैं। ऐसा अनुमान है। कि पाषाण युग की समाप्ति ईसा से 10,000 वर्ष पहले हो गयी थी, और इसके बाद नव पाषाण युग आरम्भ हुआ। भारत के दक्षिणी प्रायद्वीप में पाषाण युग की संस्कृति के कुछ तत्व मिलते है और साथ ही वहा की जमीन भी सबसे अधिक प्राचीन है। इस आधार **स्टुअर्ट पिगट** (Stuart Piggot) ने यह निष्कर्ष दिया है कि इस क्षेत्र के निवासी पूर्व पुरुषभ (Palaeo-anthropoid) समूह के प्रतिनिधि थे अथवा जावा में पाये जाने वाले "सर्वप्रथम सीधे चलने वाले" मनुष्य से सम्बन्धित थे। लेकिन यह व्यक्ति किस प्रजाति के थे, इसके बारे में कोई निष्कर्ष नहीं दिया जा सकता। भारत के पूर्वी भाग में नव-पाषाण काल की संस्कृति के भी कुछ तत्व मिलने के कारण यहां की प्रजातियों पर कुछ प्रकाश पड़ता है। कुछ विद्वान इस क्षेत्र के निवासियों को क्रो-मेगनन (Cro-Magnon) प्रजाति से सम्बन्धित मानते हैं जबकि दूसरे विद्वान इन्हें प्रोटो - आस्ट्रेलॉयड (Proto-Australoid) का प्रतिनिधि समझते हैं। वास्तविकता क्या है, इसे प्रमाणित रूप से स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

सिन्धू घाटी की सभ्यता

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की सभ्यता के नाम से प्रसिद्ध सिन्धु घाटी की सभ्यता हमारे प्रजातीय इतिहास पर काफी प्रकाश डालती है। यह सभ्यता आज से लगभग 5500 वर्ष पूर्व ताम्र युग और कांस्य युग से सम्बद्ध है। हड़प्पा की खोज रेलवे लाइन के निर्माण के दौरान 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुई, जबकि मोहनजोदडो का पता आर. डी. बनर्जी ने सन् 1922 में लगाया। इन दोनों स्थानों के बीच लगभग 400 मील की दूरी है, और इन्हीं स्थानों की खुदाई से प्राप्त अनेक कंकालों, खोपड़ियों, कांसे की वस्तुओं तथा मूर्तियों के आधार पर हम भारत की विभिन्न प्रजातियों के बारे में कुछ अल्प ज्ञान प्राप्त कर सके हैं। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में प्राप्त अवशेषों के आधार पर जिन प्रमुख प्रजातियों का संकेत मिलता है। उनमे प्रोटो – आस्ट्रेलॉयड, भू-मध्यसागरीय, मंगोलॉयड और अल्पाइन प्रजाति की छोटे सिर वाली आर्मीनॉयड शाखा के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सिन्धु घाटी की सभ्यता के निर्माण के समय विभिन्न विद्वानों

ने पृथक - पृथक प्रमाणों के आधार पर तत्कालीन प्रजातियों के अस्तित्व की कल्पना की हैं। इसके संक्षिप्त विवेचन द्वारा हम वास्तविकता को समझने का प्रयत्न कर सकते हैं :

डॉ. गुहा (B.S. Guha) ने इस खुदाई में प्राप्त कुछ कंकालों और मूर्तियों के आधार पर उस समय प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड और भू -मध्यसागरीय प्रजाति के अस्तित्व को अधिक महत्व दिया है। मोहनजोदड़ो में जो मूर्तियाँ मिली हैं उनमें से एक कांसे की प्रतिमा है जिसके होंठ मोटे हैं। इसे प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड से सम्बन्धित माना जा सकता है। दूसरी मूर्ति एक दाढ़ी वाले पुरुष की है जो भू-मध्यसागरीय प्रजाति के समान आकृति वाला है । तीसरी और चौथी मूर्ति की रचना क्रमशः मंगोल और आर्मीनॉयड प्रारूप को स्पष्ट करती है। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा और चानूदारों की खुदाई में मिलने वाले लगभग 50 नर-कंकालों में से मंगोल और अल्पाइन प्रजाति की आर्मीनॉयड शाखा के केवल एक-एक कंकाल ही मिले हैं जबकि अधिकतर कंकाल प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड तथा भू-मभध्यसागरीय प्रजाति की विशेषताओं को स्पष्ट करते हैं । इसमें भी प्रोटो - आस्ट्रेलॉयड का अस्तित्व संदिग्ध है, क्योंकि प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड प्रजाति कभी भी मूर्तिपूजक नही रही है है जबकि इन स्थानों की खुदाई में अनेक मूर्तिया भी प्राप्त हुई है । इससे डॉ. गुहा का निष्कर्ष है की सिन्धु घाटी की सभ्यता का निर्माण भूमध्यसागरीय प्रजाति के द्वारा ही हुआ था। इससे स्पष्ट होता है कि भारत की जनसंख्या में भू-मध्यसागरीय प्रजाति (द्रविड़ भाषी लोग) का इतिहास सबसे अधिक प्राचीन है। डॉ. मजूमदार ने भी गुहा के इस निष्कर्ष से सहमति प्रकट की है।

कुछ विद्वानों ने भू-मध्यसागरीय प्रजाति के साथ ही प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड प्रजाति के महत्व को भी स्वीकार किया है। मुख्यतया मोहनजोदडो में प्रोटो- आस्ट्रेलॉयड प्रारूप के तीन कंकाल प्राप्त हुए हैं और हड़प्पा के कब्रिस्तान से भी कुछ ऐसे कंकाल मिले हैं जिनकी आकृति प्रोटो- आस्ट्रेलॉयड के समान है । फ्रेडरिक और मुलर ने प्रथम तीन कंकालों को "वेड्डॉयड" कहा है जो प्रोटो- आस्ट्रेलॉयड का ही नाम है । मस्की में, जहाँ सिन्धु सभ्यता के कुछ अवशेष मिले है, आज भी लम्बे तथा चौड़े सिर वाले और पतली नाक वाले व्यक्ति पाये जाते हैं । इससे भी इस स्थान पर प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड प्रजाति के होने की सम्भावना की जा सकती है।

डॉ. मजूमदार के अनुसार, सिन्धु घाटी की सभ्यता के निर्माण में प्रोटो- आस्ट्रेलॉयड प्रजाति का कोई भी योगदान नहीं है क्योंकि इस सभ्यता के निर्माण काल के समय आस्ट्रेलॉयड प्रजाति युग की विशेषताओं में ही जीवन व्यतीत कर रही थी । इससे अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता के अवशेषों में जो अनेक मूर्तियाँ मिली हैं उनमें से कुछ मूर्तिया ऐसी स्त्रियों की हैं जो नगन दशा में हैं। ऐसी नग्न मूर्तियाँ मैसोपोटामिया और बिल्लोचिस्तान में भी प्राप्त हुई हैं । मैसोपोटामिया भू - मध्यसागरीय प्रजाति का केन्द्र स्थान है। इस तथ्य से दो महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं -प्रथम तो यह कि सिन्धु सभ्यता और भू-मध्यसागरीय प्रजाति के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है, और दूसरा यह कि भारत में भू-मध्यसागरीय प्रजाति का प्रवेश मैसोपोटामिया और उसके निकटवर्ती प्रदेशों से हुआ है ।

उपयुक्त सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्रागैतिहासिक काल में भारत की विभिन्न प्रजातियों से सम्बन्धित सभी निष्कर्ष सिन्धु घाटी की सभ्यता को केन्द्र मानकर ही दिये गये हैं। इनके आनुसार भू-मध्यसागरीय, प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड और आर्मीनॉयड शाखा ही वे प्रमुख प्रारूप हैं जो भारत के प्रारम्भिक प्रजातीय तत्वों को स्पष्ट करते हैं। सिन्धु सभ्यता से प्राप्त अवशेषों के आधार पर हमें यह अवश्य मानना पड़ेगा कि इस सभ्यता का निर्माण भू-मध्यसागरीय (जिन्हें हम द्रविड कहते हैं) प्रजाति के द्वारा हुआ, लेकिन यह किसी प्रकार नहीं माना जा सकता कि उस समय भारत में आर्य प्रजाति का अस्तित्व नहीं था। पश्चिमी विद्वानों ने तो हमें अपने ही देश में विदेशी बना दिया है लेकिन वे आज तक ऐसे प्रमाण नहीं ढूँढ सके हैं जिसके आधार पर मध्य एशिया से आर्यों का भारत में आगमन प्रमाणित किया जा सके। वास्तव में प्रागेतिहासिक काल से ही उत्तर और मध्य भारत आर्यों का मूल निवास स्थान रहा है। सिन्धु घाटी में भूमध्यसागरीय अथवा द्रविड़ प्रजाति द्वारा एक विकसित सभ्यता का निर्माण कर लेने के बाद आर्यों ने उन पर आक्रमण किया जिनका प्रमाण मोहनजोदड़ो में मिले कुछ कंकालों की घायल अस्थियाँ हैं। इस आक्रमण में द्रविड़ पराजित हुए और उन्होंने दक्षिण की और बढ़ना आरम्भ किया जहाँ वे स्थायी रूप से जाकर बस गये । इसके उपरान्त भी हमें यह स्वीकार करना होगा कि प्रागैतिहासिक काल में भारत की प्रजातियों के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान अत्यंत सीमित है। पुरातत्व की शोध में कई क्षेत्र अभी बिल्कुल अछूते हैं। जो कुछ भी कार्य हुआ है उसके आधार पर हम केवल भविष्य के प्रति ही आशावान हो सकते हैं ।

ऐतिहासिक काल

(HISTORIC PERIOD)

ऐतिहासिक युग का आरम्भ भारत में वैदिक संस्कृति अथवा आर्य - सभ्यता के विकास के बाद से माना जाता है। यद्यपि इस युग का आरम्भिक प्रजातीय इतिहास भी पूर्णतया स्पष्ट नही है लेकिन तो भी प्रागेतिहसिक युग की अपेक्षा यह कही अधिक स्पष्ट है इस युग में विभिन्न प्रजातियों की उत्पति और उनकी भेदक विशेषताओं को स्पष्ट करने के कार्य में हर्बर्ट रिजले (Herbert Risley) ने महत्वपूर्ण योगदान दिया । आपको भारत की सन् 1901 की जनगणना (census) का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था और इसी जनगणना के दौरान आपने भारत में पायी जाने वाली प्रमुख प्रजातियों की उत्पत्ति, विशेषताओं तथा क्षेत्रीय वितरण को अधिक से अधिक प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। इसका विस्तृत विवरण रिजले ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'The People of India' में दिया है। इसके पश्चात् सन 1931 की जनगणना के अध्यक्ष जे. एचं. हट्टन (J.H. Hutton) ने जो निष्कर्ष दिये, उनके आधार पर डॉ. गुहा ने भारत की प्रजातियों को एक दूसरे ही रूप में प्रस्तुत किया। बाद में इसी विवरण को हट्टन और मजूमदार ने भी स्वीकार कर लिया। प्रस्तुत विवेचन में हम इन्हीं प्रमुख विद्वानों –रिजले, गुहा, हट्टन और मजूमदार-के वर्गीकरणों के आधार पर भारत के प्रजातीय इतिहास को समझने का प्रयत्न करेंगे।

यह ध्यान रखना होगा कि अधिकांश विद्वानों ने भारत की वैदिक सभ्यता का निर्माण करने वाली इण्डो-आर्यन प्रजाति का ईसा से लगभग 2000 वर्ष पूर्व मध्य एशिया से आकर यहाँ बसने पर जोर दिया है । यद्यपि वर्तमान खोजों के आधार पर हम इस कथन में विश्वास नहीं करते, लेकिन इन विद्वानों ने जिस रूप में आर्य अथवा इण्डो – आर्यन प्रजाति का उल्लेख किया है, अध्ययन की सरलता के लिए इसे हम उसी रूप में प्रस्तुत करेंगे ।

हर्बर्ट रिजले के विचार

(Views of Hebert Risley)

भारत की प्रजातियों के वैज्ञानिक विवेचन में हर्बर्ट रिजले अग्रणीय हैं। लिखित प्रमाणों के अभाव में यद्यपि विभिन्न प्रजातियों के वर्गीकरण और उनकी उत्पत्ति को स्पष्ट करना अत्यधिक कठिन था, लेकिन श्री रिजले ने मानवमितीय पद्धति (anthropometry) के आधार पर अध्ययन करके भारत की समस्त प्रजातियों को सात प्रमुख भागों में विभाजित किया। इन सात प्रजातियो में आपने प्रथम तीन प्रजातियों को मौलिक जबकि शेष को विभिन्न प्रजातियों के मिश्रण के रूप में स्वीकार किया। इन प्रजातियों की शारीरिक विशेपताओं और उनके क्षेत्रीय वितरण को निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है :

1. **द्रवीडियन (Dravidian)** - द्रविड प्रजाति के शारीरिक लक्षण भूमध्यसागरीय प्रजाति के ही समान हैं । है। रिजले ने इस प्रजाति को भारत की मूल अथवा सबसे प्राचीन प्रजाति के रूप में स्वीकार किया है । इस प्रजाति के लोग गंगा के निचले हिस्से से लेकर तमिलनाडू तक फैले हुए हैं । इनका प्रमुख विस्तार तमिलनाडू, हैदराबाद, मध्य प्रदेश के दक्षिणी भागों और छोटा नागपुर के पठारी प्रदेश में पाया जाता है। दक्षिण भारत के पनियन लोग और छोटा नागपुर की संथाल जनजाति इस वर्ग के सबसे स्पष्ट प्रतिनिधि हैं। इस प्रजाति के व्यक्तियों का कद छोटा, रंग काला, बाल सामान्य से अधिक और लहरदार, लम्बा सिर, कुछ चौड़ी और भारी नाक तथा गहरी काली आंखे कुछ प्रमुख शारीरिक विशेषताएँ हैं ।
2. **इण्डो-आर्यन (Indo-Aryon)** यह व्यक्ति कॉकेशायड प्रजाति की विशेषताओं को स्पष्ट करते हैं । उन्हें अल्पाइन प्रजाति की आर्मीनॉइड शाखा के अधिक निकट माना जा सकता है। भारत में इस प्रजाति के लोग पंजाब, राजस्थान, कश्मीर और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में फैले हुए हैं। इनकी शारीरिक विशेषताओं में लम्बा कद, गोरे से गेहुए तक रंग, लम्बा सिर, नाक पतली और लम्बी, काली आंखे और शरीर पर घने बाल अधिक महत्वपूर्ण हैं।

3. **मंगोलॉयड (Mongoloid)-** भारत की कुल जनसंख्या में इस प्रजाति के व्यक्तियों का प्रतिशत कम होने पर यह काफी लम्बे क्षेत्र में फैले हुए हैं। उत्तर भारत में हिमालय की सम्पूर्ण तलहटी तथा पर्वतीय प्रदेशों (अर्थात हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार और असम के उत्तरी सीमा प्रान्त) में इस प्रजाति के लोगों का केन्द्रीयकरण है। इस प्रजाति के व्यक्तियों का सिर चौड़ा, कद औसत, रंग पीलापन लिये हुए, चेहरा गोल, शरीर पर बालों की मात्रा कम, आखें भारी और अधखुलीं, नाक कुछ छोटी और चपटी लेकिन सुन्दर, मुलायम बाल आदि कुछ प्रमुख शारीरिक विशेषताएँ हैं। भारतीय ग्रन्थों में इस प्रजाति को कहीं-कहीं पर 'किरात' के नाम से सम्बोधित किया गया है।
4. **आर्यो-द्रवीडियन (Aryo-Dravidian)** यह प्रजाति आर्य और द्रविड़ प्रजाति के मिश्रण का परिणाम है। इस प्रजाति के व्यक्ति पंजाब के दक्षिण-पूर्वी भागों, उत्तर प्रदेश के अधिकांश हिस्सों, दक्षिण-पूर्वी राजस्थान, बिहार, दक्षिण-पश्चिमी असम और उत्तरी मध्य प्रदेश में पाये जाते हैं। एक मिश्रित प्रजाति होने के कारण इसकी शारीरिक विशेषताएँ इण्डो - आर्यन तथा द्रविड़ प्रजाति से मिलकर बनी हैं। इस प्रकार मध्यम कद, गेहुंए से लेकर सॉवले रंग तक, लम्बा सिर, नाक मध्यम से लेकर लम्बी तक और ऑख का काला रंग इस प्रजाति की प्रमुख शारीरिक विशेषताएँ हैं।
5. **मंगोलो-द्रवीडियन (Mongolo - Dravidian)** -रिजले का विचार है कि इस प्रजाति की उत्पत्ति मंगोल प्रजाति का ऐसे द्रविडों से मिश्रण होने से हुई जिनके रक्त में कुछ अंश इण्डो-आर्यन प्रजाति का था। इस प्रकार मंगोलो-द्रवीडियन प्रजाति में प्रमुख रूप से मंगोल और द्रविड तथा कुछ अंश में इण्डो-आर्यन प्रजाति की शारीरिक विशेषताओं का मिश्रण है। इनका रंग काला, सिर चौडा और पीछे से कुछ चपटा, नाक मध्यम और कभी-कभी कुछ चपटी, मध्यम कद तथा चेहरे पर घने बाल कुछ प्रमुख शारीरिक विशेषताएं हैं। इस शाखा के स्पष्ट प्रतिनिधि पश्चिमी बंगाल और उड़ीसा में सबसे अधिक संख्या में हैं।
6. **सीथो-द्रवीडियन (Scytho-Dravidian)** यह प्रजाति मध्य एशिया से भारत में आने वाली सीथियन प्रजाति तथा भारत की मूल द्रविड़ प्रजाति की मिश्रित शाखा है। इस प्रजाति के लोग मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र तथा कुर्ग की पहाड़ियों में फैले हुए हैं। महाराष्ट्री ब्राहाण इस प्रजाति के विशेष प्रतिनिधि माने जाते हैं। सीथियन प्रजाति में मंगोल तत्वों की अधिकता होने के कारण सीथो – द्रवीडियन वर्ग भी दो भागों में विभक्त है। उच्च समूहों में सीथियन विशेषताओं की अधिकता है जबकि निचले समूहों में द्रविड़ प्रजाति की। सामान्य रूप से गोरा रंग, चौड़ा सिर, मध्यम कद, सुन्दर और छोटी नाक और शरीर पर कम बाल इस प्रजाति की कुछ प्रमुख शारीरिक विशेषताएँ हैं।
7. **तुर्को-इरानियन (Turko-Iranian)** रिजले ने भारत के प्रजातीय तत्वों का विवेचन अविभाजित भारत के समय में दिया था। इस कारण आपने यहाँ उस शाखा का भी उल्लेख किया जो बिलोचिस्तान के बिल्लोच और ब्राहुई लोगों की विशेषताओं को स्पष्ट करती थी। वर्तमान भारत में इस प्रजाति के अब कोई लक्षण उपलब्ध नहीं हैं, इसिलिए अपनी अध्ययन-वस्तु में सम्मिलित नहीं करते।

भारत में **उपर्यक्त प्रजातियों की उत्पत्ति किस प्रकार तथा किस क्रम में हुई ?** इसे स्पष्ट करने में भी रिजले ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आपके अनुसार भारत में विभिन्न प्रजातीय समूहों की उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार रहा है :

1. द्रविड भारत की मूल और प्रांचीनतम, प्रजाति हैं। इस प्रजाति का आस्ट्रेलिया के आदिवासियों अथवा आस्ट्रेलॉयड से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह कहना कि यह निग्रिटो प्रजाति की ही एक उपशाखा है, गलत है क्योंकि द्रविड़ प्रजाति में नीग्रिटो की कोई विशेषता विशुद्ध रूप से नहीं मिलती। आरम्भ में यह भारत के लगभग सभी भागों में फैली हुई थी लेकिन बाद में इण्डो-आर्यन प्रजाति के द्वारा आक्रमण होने के कारण यह दक्षिण भारत की ओर बढने लगी और बाद में यहीं स्थायी रूप से रहने लगी।

2. भारत में सबसे पहले बाहर से आकर बसने वाली प्रजाति इण्डो-आर्यन थी। इस प्रजाति ने मध्य एशिया की ओर से भारत के उत्तरी – पश्चिमी सीमा प्रान्त से यहाँ प्रवेश किया और इस प्रकार आरम्भ में भारत के पश्चिमी सीमा प्रान्त में बस गई, जहाँ से इसने सबसे पहले उत्तर भारत की ओर बढ़ना आरम्भ किया।
3. इण्डो-आर्यन प्रजाति द्वारा उत्तर भारत की ओर बढ़ने के समय सबसे पहले इनका मिश्रण द्रविड़ प्रजाति से हुआ। इस प्रकार आरम्भ में इण्डो-आर्यन प्रजाति जिन-जिन क्षेत्रों की ओर बढ़ती रही, इनके मिश्रण से आयों द्रवीडियन प्रजाति की उत्पत्ति हुई जिसकी विशेषताएँ आज समस्त उत्तर प्रदेश के अधिकांश भागों, बिहार और मध्य प्रदेश के ऊपरी हिस्सों में पायी जाती हैं।
4. इसके पश्चात् उत्तरी एशिया की ओर से भारत की उत्तरी - पूर्वी सीमा से होकर मंगोल प्रजाति ने यहाँ प्रवेश किया। आरम्भ में यह प्रजाति केवल पहाड़ी प्रदेशों तक ही सीमित रहीं तथा इन्हीं प्रदेशों में इस प्रजाति की विशेषताओं का पर्याप्त विकास हुआ। इसी कारण उत्तर भारत के समस्त पहाड़ी क्षेत्रो में इस प्रजाति के तत्व आज भी बहुतायात के साथ विद्यमान है।
5. कुछ समय के बाद मंगोल प्रजाति ने नेपाल के नीचे से बंगाल और उड़ीसा की और बढ़ना आरम्भ किया। दूसरी ओर पश्चिम भारत की ओर से इण्डो - आर्यन प्रजाति का भी भारत के अन्य क्षेत्रों में विस्तार हो रहा था। इसके फलस्वरूप पहाड़ों की तलहटी और उससे कुछ नीचे तक के क्षेत्रो में मंगोल तथा द्रवीडियन प्रजाति का मिश्रण होने से मंगोलो - द्रवीडियन प्रजाति की उत्पत्ति हुई, जबकि बंगाल और उड़ीसा में मंगोलो-द्रविडियन प्रजाति की विशेषताओ में इण्डो-आर्यन प्रजाति की कुछ विशेषताएँ सम्मिलित हो गयीं।

6. भारत में पायी जाने वाली सीथो-द्रवीडियन प्रजाति की उत्पत्ति तब हुई जब मध्य एशिया में ही रहने वाली सीथियन प्रजाति ने भारत के पश्चिमी भाग से यहाँ प्रवेश किया। आरम्भ में यह प्रजाति पंजाब, राजस्थान तुथा गुजरात की ओर बढ़ी लेकिन आर्यों के
7. आक्रमणों के फ़लस्वरूप इसने दक्षिण भारत की ओर बढ़ना आरम्भ किया और इसी समय इसका द्रविड प्रजाति से मिश्रण होने लगा। रिजले ने मराठा लोगों को इसी मिश्रण का परिणाम बताया है। सीथियन प्रजाति को भारतीय लेखों में 'शक' नाम से भी सम्बोधित किया गया है। रिजले द्वारा प्रस्तुत भारत की विभिन्न प्रजातियों और उनके स्थानीय वितरण को निम्नाकित मानचित्र से सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। इस मानचित्र में रिजले द्वारा प्रस्तुत तुर्की – इरानियन

प्रजाति को सम्मिलित नहीं किया गया है क्योंकि अब यह भारत के क्षेत्र में नहीं है। इसके स्थान पर हमने गुहा द्वारा वर्णित 'चौड़े सिर वाली प्रजाति' को सम्मिलित कर लिया है।

समालोचना - रिजले के विचार अत्यधिक व्यवस्थित होने के बाद भी कुछ दोषों से युक्त हैं। इसी कारण हट्टन तथा गुहा ने रिजले के निष्कर्षो को पूर्णतया स्वीकार नहीं किया है। उपयुक्त वर्गीकरण के प्रमुख दोषों को निम्न प्रकार समझा जा सकता है :

1. यह कहना कि द्रविड भारत के प्राचीनतम निवासी थे, उचित प्रतीत नहीं होता। वास्तव में प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड प्रजाति के तत्व सबसे अधिक मौलिक और प्राचीन हैं।
2. रिजले ने जिन प्रजातियों का उल्लेख किया है उनमें अनेक शब्द एक विशेष भाषा-भाषी समूहों को स्पष्ट करते हैं, किसी प्रजाति को नहीं। जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं 'द्रविह' अथवा 'आर्य' भाषा-समूह के लोगों को एक प्रजाति मान लेना बिल्कुल गलत है क्योंकि यह नाम तो केवल उन समूहों का था जो द्रविड़ अथवा आर्य भाषा बोलते थे। इस प्रकार द्रविड अथवा आर्य भाषा-भाषी समूहों में एक से अधिक प्रजातियों के होने की सम्भावना की जा सकती है।
3. रिजले का वर्गीकरण पूर्ण नहीं है। भारत में आज ऐसे अनेक प्रजातीय तत्व विद्यमान हैं जिनका रिजले ने किसी भी प्रजाति के अन्तर्गत उल्लेख नहीं किया है।
4. भारत की पौराणिक गाथाओं के आधार पर, यह भी सन्देह का विषय है कि यहाँ मंगोल प्रजाति ने सीथियन अथवा शक प्रजाति से पहले प्रवेश किया। रिजले के अनुसार मंगोल प्रजाति का प्रवेश ईसा से लगभग 700 वर्ष पहले से आरम्भ हुआ था। यदि इस कथन में विश्वास कर लिया जाये, तब भी सीथियन प्रजाति का यहाँ मंगोलों से पहले आना उचित प्रतीत नहीं होता है क्योंकि महाभारत काल के बहुत पहले से ही आर्यों और शको अथवा सीथियन्स के बीच युद्धों का उल्लेख मिलता है।

डॉ. गुहा के विचार (Views of B. S. Guha)

1931 की जनगणना के लिए डॉ. हट्टन को अध्यक्ष नियुक्त किया गया तब उन्होंने भारत के प्रजातीय सर्वेक्षण के लिए डॉ. बी. एस. गुहा को विशेष रूप से इस कार्य के लिए नियुक्त किया। डॉ. गुहा ने भारत के विभिन्न भागों के 2500 से भी अधिक व्यक्तियों की मानवमितीय आधार पर परीक्षा करके तीन वर्षों बाद अनेक महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किये। भारत में प्रजातियों की उत्पत्ति तथा उनके वर्गीकरण के क्षेत्र में किया जाने वाला यह सम्भवतः सबसे सफल और प्रामाणिक अध्ययन था। यही कारण है कि डॉ. गुहा के निष्कर्षो को हट्टन ने पूर्णतया स्वीकार किया है जबकि एक - दो तथ्यों से असहमत होते हुए भी हट्टन (Hutton) और मजूमदार ने इसे भारत के प्रजातीय इतिहास में 'एक महत्वपूर्ण खोज' के रूप में स्वीकार किया है। डॉ. गुहा के अनुसार भारत में पायी जाने वाली विभिन्न प्रजातियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

1. **नीग्रिटो (Negrito)** - डॉ. गुहा नीग्रिटो को भारत का प्राचीनतम प्रजातीय तत्व मानते हैं। नीग्रिटो प्रजाति नीग्रॉयड स्कन्ध (stock) की ही एक शाखा है। इसकी शारारिक विशेषताओं में काला रंग, छोटा कद, चौड़ा सिर, ऊन की तरह बाल, कुछ चौड़ी और छोटी नाक तथा मोटे होठ प्रमुख हैं। इस प्रजाति के तत्व मालाबार की कादर तथा पुलाया जनजाति, असम की नागा

जनजाति और बिहार के पूर्वी भागों में रहने वाली जनजातियों में पाये जाते हैं। कुछ विद्वानों ने डॉ. गुहा के समर्थन में अण्डमान और निकोबार द्वीप - समूह में भी नीग्रिटो प्रजाति के तत्वों के होने का दावा किया है।

2. **प्रोटो - आस्ट्रेलॉयड (Proto-Australoid) -** डॉ. गुहा के अनुसार भारत में बाहर से आकर बसने वाली सबसे पहली प्रजाति प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड है। कुछ विद्वान ऐसा मानते है। कि यह आस्ट्रेलिया से भारत में आई, जबकि अन्य विद्वानों का विचार है कि इसकी उत्पत्ति पेलेन्सटाइन से आने वाले व्यक्तियों का नीग्रिटो प्रजाति से मिश्रण होने से हुई। इस प्रजाति के व्यक्तियों का रंग चाकलेटी, नाक चौड़ी, होंठ मोटे, कद छोटा, सिर लम्बा तथा बाल काले और घुंघराले होते हैं। डॉ. गुहा के अनुसार मध्य तथा दक्षिण भारत के अधिकांश लोग इसी प्रजाति के प्रतिनिधि हैं। इन क्षेत्रो में निम्न वर्ण की जातियों में इस प्रजाति का रक्त अधिक मात्रा में पाया जाता है। हमारे समाज में इन्हें 'निषाद' भी कहा जाता रहा है।
3. **मंगोलॉयड (Mongoloid)** गुहा ने भारत में पायी जाने वाली मंगोलॉयड प्रजाति के दो प्रमुख प्रारूपों (types) का उल्लेख किया है - (क) प्राचीन मंगोलॉयड (Palaeo Mongoloid) तथा (ख) तिब्बती मंगोलॉयड (Tibeto Mongoloid)। **प्राचीन मंगोलॉयड** प्रमुख रूप से दो भागों में बंटे हुए हैं -लम्बे सिर वाले और चौड़े सिर वाले। लम्बे सिर वाले मंगोलॉयड उत्तर प्रदेश और असम के सीमान्त प्रदेशों, तथा चौड़े सिर वाले नेपाल, बर्मा और वर्तमान नागालैण्ड में फैले हुए हैं। इनकी सभी शारीरिक विशेषताएँ मंगोल प्रजाति के ही समान हैं, अन्तर केवल बनावट का है। **तिब्बती मंगोलॉयड** में 'B' रक्त की प्रधानता है। यह विशेष रूप से तिब्बत, भूटान, इरावती नदी की घाटी और असम के अनेक भागों में पाये जाते हैं। पौराणिक रूप से इस प्रारूप का उल्लेख हमें 'किरात' शब्द में मिलता है।
4. **भूमध्यसागरीय (Mediterranean)**- अन्य विद्वानों के समान डॉ. गुहा ने भी भूमध्यसागरीय प्रजाति को भारत के प्रजातीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। आपके अनुसार भारत में लम्बे सिर वाली प्रजाति के कई रूप उपलब्ध होने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह प्रजाति अनेक भागों में विभक्त होकर भूमध्यसागर की ओर से भारत में आई है। इस प्रकार इसकी तीन प्रमुख शाखाओं का उल्लेख किया जा सकता है - (क) प्राचीन भूमध्यसागरीय (Palaeo Mediterranean), (ख) भूमध्यसागरीय (Mediterranean), तथा (ग) पूर्वी प्रकार (Oriental Type)। बक्सटन (Buxton) का भी यही विचार है कि भारत की जनसंख्या में लम्बे सिर का अधिक्य होने के साथ ही उनमें जो भिन्नता पायी जाती है, उससे भूमध्यसागरीय प्रजाति का अनेक भागों में बटकर यहाँ प्रवेश करना सिद्ध होता है। इन तीनों शाखाओं में प्राचीन भूमध्यसागरीय प्रजाति का सम्बन्ध द्रविड़ भाषा (विशेषकर कन्नड़, मलयालम, तमिल) वाले प्रदेशों से लगाया जाता है जो सम्भवत: भारत में सबसे पहले आई। इसके बाद दूसरी शाखा ने यहाँ प्रवेश किया जो भारत के निचले प्रदेशों में न जा सकने के कारण पंजाब और गंगा की घाटी के ऊपर हिस्से में ही बस गयी। भूमध्यसागरीय प्रजाति की तीसरी शाखा को हम 'पूर्वी प्रकार' सम्भवतः इसलिए कहते हैं कि यह दूसरी शाखा और यहाँ के मूल निवासियों के मिश्रण का परिणाम है। इनका विस्तार पंजाब, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में सर्वाधिक पाया जाता है। यह शाखा कॉकेशायड स्कन्ध के कुछ निकट है।
5. **चौड़े सिर वाली प्रजाति (Brachy Cephalic Race)**- डॉ. गुहा ने भारत में चौड़े सिर वाली प्रजाति को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया है। इसको 'पश्चिमी चौड़े सिर वाली प्रजाति' भी कहा जाता है क्योंकि इसका मूल स्थान पश्चिमी और मध्य यूरोप माना गया है। डॉ. गुहा ने भारत में इस प्रजाति की तीन प्रमुख शाखाओं का उल्लेख किया है - (क) अल्पाइन (AIpine), (ख) दिनारिक (Dinaric), तथा (ग) आर्मीनॉयड (Arminoid)। प्रथम शाखा को **अल्पाइन** इसलिए कहा गया क्योंकि इसकी शारीरिक विशेषताएँ मध्य यूरोप के आल्पस पर्वत के आस-पास रहने वाले व्यक्तियों में सबसे अधिक देखने को मिलती हैं। इस शाखा की शारीरिक विशेषताओं में त्वचा का पीलापन लिये हुए भूरा रंग, मध्यम कद (औसतन 165 सेण्टीमीटर), कन्धे चौड़े और नाक छोटी व ऊँची प्रमुख लक्षण हैं। भारत में इस शाखा के सबसे अधिक लक्षण गुजरात में और कुछ सीमा तक मध्य प्रदेश, पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में पाये जाते हैं। दूसरी शाखा का सम्बन्ध आल्पस पर्वतमाला के ही एक अन्य भाग **'दिनारिक'** से है। ढलवा माथा, सिर का पिछला भाग चपटा, उठी हुई ठोड़ी, पतले होंठ, औसत कद (लगभग 170 सेण्टीमीटर),मोटी गर्दन, त्वचा का हल्के जैतूनी

से लेकर काला तक रंग, इस शाखा की प्रमुख शारीरिक विशेषताएँ हैं। इसके सर्वोत्तम प्रतिनिधि कुर्ग में पाये जाते हैं जबकि बंगाल, उड़ीसा और दक्षिण भारत में भी इस शाखा से सम्बन्धित कुछ विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। तीसरी शाखा अर्थात **आर्मीनॉयड** को यद्यपि एक उच्च सभ्यता वाली शाखा के रूप में प्रस्तुत किया गया है लेकिन भारत में इसका अधिक विस्तार नहीं मिलता। डॉ. गुहा ने बम्बई के पारसियों को ही इस शाखा का प्रतिनिधि स्वीकार किया है। रिजले ने चौड़े सिर वाली प्रजाति को ही मंगोलो - द्रवीडियन के नाम से सम्बोधित किया है।

6. **नॉर्डिक (Nordic)**- डॉ. गुहा का विश्वास है कि इस प्रजाति ने भारत में ईसा से लगभग 1500 वर्ष पहले प्रवेश किया। आरम्भ में यह पंजाब में बसे, और इसके बाद गंगा-यमुना की घाटी की ओर बढ़ते हुए भारत के अन्य भागों में फैल गये। इनका लम्बा सिर, ऊँची और पतली नाक, पतले होंठ, कद औसत से कुछ अधिक, सफेद से लेकर गेहुँआ तक रंग, सीधे बाल आदि कुछ प्रमुख शारीरिक विशेषताएँ हैं। इस प्रजाति के अधिकतर व्यक्ति सिन्धु नदी की ऊपरी घाटी (जो अब पाकिस्तान में है), हिन्दूकुश पर्वत के दक्षिणी भागों, कश्मीर, पंजाब और राजस्थान में फैले हुए हैं।

डॉ. गुहा की उपर्युक्त खोज भारत के प्रजातीय इतिहास में महत्वपूर्ण है। इस वर्गीकरण के द्वारा गुहा ने दो तथ्यो पर विशेष जोर दिया है। प्रथम तो यह कि 'निग्रिटो' भारत का सबसे प्राचीन प्रजातीय तत्व है और दूसरा यह कि भारत में चौड़े सिर वाली प्रजाति के अस्तित्व को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए। इस आधार पर ही **डॉ. कीथ** का कहना है कि "डा. गुहा के सर्वेक्षण का सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह खोज निकालना है कि भारत में चौड़े सिर वाले व्यक्तियों का आधिक्य है, जो अभी तक शंका का विषय बना हुआ था। इसके उपरान्त भी डॉ. गुहा के निष्कर्षों को दोषरहित नहीं कहा जा सकता। उनके वर्गीकरण का सबसे बड़ा दोष यह है कि उन्होंने 'निग्रिटो' तत्व को सबसे अधिक मौलिक कहा है जिसे प्रमाणित करना अत्यन्त कठिन है। दूसरा दोष यह है कि डॉ. गुहा द्वारा पश्चिमी विचारकों और विशेष रूप से हट्टन के द्वारा प्रस्तुत प्रजातियों की नामावली को प्रयोग में लाने से प्रजातीय विवेचन में कुछ अस्पष्टता - सी आ गयी है।

डॉ. हट्टन के विचार (Views of Dr. J. H. Hutton)

आरम्भ में ही यह कहना उचित होगा कि डॉ. हट्टन ने भारत की प्रजातियों का कोई पृथक सर्वेक्षण नहीं किया है। सन् 1931 की गणना के अध्यक्ष होने के नाते डॉ. हट्टन के सभी निष्कर्ष अपने साथियों और विशेषकर डॉ. गुहा द्वारा किये गये अध्ययनों पर ही आधारित है। इस प्रकार इन निष्कर्षो को प्रस्तुत करने का तो उन्हें कोई श्रेय नहीं है लेकिन विषय को सरल क्रम में समझाने तथा प्रजातीय अध्ययन को एक निश्चत दिशा देने में आपने अवश्य महत्वपूर्ण योगदान दिया है। डॉ. हट्टन के अनुसार भारत की जनसंख्या में पाये जाने वाले प्रजातीय तत्वो के वर्गीकरण और उनके क्रम को निम्नांकित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है।

1. **नीग्रिटो (Negrito) -** डॉ. हट्टन के अनुसार निग्रिटो टो भारत की सबसे प्राचीन प्रजाति है। इसका मूल स्थान 'मैलिनीशिया' है जहाँ से यह भारत के अनेक भागों में फैल गयी। वर्तमान समय में इस प्रजाति की विशेषताएँ भारत में लगभग समाप्त हो गयी हैं।
2. **प्रोटो - आस्ट्रेलॉयड (Proto-Australoid)** - यह आस्ट्रेलॉयड प्रजाति की सबसे प्राचीन शाखा है जिसने नीग्रिटो के बाद भारत में प्रवेश किया। कुछ विद्वानों ने इसी शाखा को पूर्व - द्रविड़ (Pre-Dravidian) भी कह दिया है। इसने सम्भवत: पैलेन्सटाइन की ओर से भारत में प्रवेश किया।
3. **भूमध्यसागरीय (Mediterranean)** - प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड के बाद भूमध्यसागरीय प्रजाति का यहाँ प्रवेश हुआ। यह प्रजाति प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित होकर यहाँ आई। प्रथम को हम 'प्राचीन भूमध्यसागरीय प्रजाति' कहते हैं जिसे खेती करने का ज्ञान था। दूसरी शाख़ा ने पूर्वी यूरोप से यहाँ प्रवेश किया। यह धातुओं से विभिन्न प्रकार के उपकरण बनाने और नगरीय सभ्यता का विकास करने में कुशल थी। डॉ. हट्टन का विचार है कि इस दूसरी शाखा ने ही भारत की सिन्धु सभ्यता का निर्माण किया। इसी शाखा को कुछ विद्वान 'द्रविड़ प्रजाति' कहते हैं।

4. **अल्पाइन प्रजाति की आर्मीनॉयड शाखा (Arminoid Branch of Alpine)**- भारत में पाये जाने वाले चौड़े सिर के लोगों को डॉ. हट्टन ने अल्पाइन प्रजाति की आर्मीनॉयड शाखा कहा है। यह प्रजाति ईसा से 3000 वर्ष पूर्व पामीर की पहाडियों की ओर से भारत पहुंची। यह शाखा सम्भवतः द्रविड भाषा बोलती थी।
5. **मंगोलॉयड (Mongoloid) -** इस प्रजाति ने भारत के उत्तर- पूर्वी भाग से यहाँ प्रवेश किया और बाद में दक्षिण की ओर बढ़ते हुए बंगाल की खाड़ी तक फैल गयी।
6. **इण्डो - आर्यन (Indo-Aryan)** - डॉ. हट्टन के अनुसार यह प्रजाति ईसा से केवल 1500 वर्ष पहले भारत में आई और इसी ने भारत में वैदिक - सभ्यता का निर्माण किया । प्राचीनता के दृष्टिकोण से सम्भवतः इस प्रजाति से सम्बन्धित डॉ. हट्टन के निष्कर्ष सबसे अधिक सन्देहयुक्त हैं । इससे तो यही सिद्ध होता है कि भारत की वैदिक सभ्यता का इतिहास 3000 वर्ष से भी कम प्राचीन है । यह निष्कर्ष किसी प्रकार भी प्रामाणिक नहीं है ।

डॉ.मजूमदार के विचार (Views of Dr. D. N. Majumdar)

भारत के प्रसिद्ध मानवशास्त्री डॉ. डी. एन. मजूमदार ने भारत की प्रजातियों का कोई विस्तृत विवरण तो नहीं दिया है लेकिन यहाँ की मूल प्रजाति के विषय को लेकर आपने महत्वपूर्ण निष्कर्ष दिये हैं। डॉ. मजूमदार डॉ. हट्टन तथा गुहा के इस निष्कर्ष से बिल्कुल भी सहमत नहीं हैं कि 'निग्रिटो ' भारत की मूल प्रजाति है । आपके अनुसार भारत की मूल प्रजाति केवल 'प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड' ही है। गुहा और हट्टन ने जिन आधारों पर निग्रिटो तत्व के मौलिक होने की बात कही है वे इतने भ्रमपूर्ण हैं कि उनमें विश्वास नहीं किया जा सकता। डॉ. मजूमदार ने ऐसे अनेक तर्क दिये हैं जिसके आधार पर 'निग्रिटो' के स्थान पर 'प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड' प्रजाति का प्राचीनतम होना सिद्ध होता है :

1. **भारत में नीग्रिटो प्रजाति के लक्षणों का पूर्णतया अभाव है ।** यदि नीग्रिटो प्रजाति सबसे अधिक प्राचीन होती तब भारत के विभिन्न भागों में इसके तत्व बहुतायत से पाये जाते। इसके विपरीत, वास्तविकता यह है कि अण्डमान द्वीप को छोड़कर भारत के किसी भी हिस्से में नीग्रिटो प्रजाति के लक्षण देखने को नहीं मिलते । इस तथ्य को रिजले ने भी स्वीकार करते हुए कहा है कि अण्डमान के व्यक्तियों में पाये जाने वाले प्रजातीय तत्वों के आधार पर भारत के प्रजातीय इतिहास को स्पष्ट नहीं किया जा सकता । ऐतिहासिक रूप से भी नीग्रिटो प्रजाति कभी इतनी साहसी नहीं रही है कि वह भारत जैसे विशाल देश का आधार बन जाती । विलियम टर्नर ने अनेक कपालों की माप करके भी यही निष्कर्ष दिया है कि भारत की जनसंख्या में नीग्रिटो तत्व का कोई हाथ नहीं है बल्कि इनसे प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड प्रजाति की प्रधानता होने का संकेत मिलता है।
2. डॉ. गुहा और हट्टन ने जिन आधारों पर नीग्रिटो तत्व को महत्व दिया है, वे गलत हैं। गुहा ने मध्य प्रदेश और दक्षिण भारत की प्रजातियों में नीग्रिटो तत्व होने की बात कही है । इनके समर्थन में वेंकटाचार ने लिखा है कि मध्य प्रदेश की गोंड जनजाति में नीग्रिटो तत्व की प्रधानता है । इसी प्रकार एल. ए. के. अय्यर ने ट्रावनकोर कोचीन की कादर, पुलय, उराली और कनिकर जनजातियों में कुंचित और घुँघराले बाल देखकर यह निष्कर्ष दे दिया कि उनमें नीग्रिटो तत्व की प्रधानता है। वास्तव में इनमें से कोई भी **निष्कर्ष वैज्ञानिक आधार पर प्रमाणित नहीं किये जा सकते।** जिन स्थानों पर नीग्रिटो तत्व होने की बात कही गयी है, उन्हीं स्थानों की जनजातियों का अध्ययन करने के पश्चात् श्री अयप्पन का कथन है कि इनमें नीग्रिटो तत्व की सम्भावना करना बिल्कुल भ्रान्ति है । केवल बालों की बनावट के आधार पर ही किसी समूह को नीग्रिटो प्रजाति से नहीं जोड़ा जा सकता । इन स्थानों पर अधिकांश जनजातियों की शारीरिक विशेषताएँ प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड के समान हैं और जिन विशेषताओं को कुछ व्यक्तियों ने नीग्रिटो तत्व कह दिया वे भी वास्तव में प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड से ही सम्बन्धित हैं ।
3. यदि हम **रक्त - समूह** (blood group) के आधार पर अध्ययन करें, तब भी भारत में नीग्रिटो प्रजाति का होना सिद्ध नहीं होता। नीग्रिटो प्रजाति में "B" रक्त-समूह की प्रधानता होती है जबकि भारत की अधिकतर जनजातियों में 'A' रक्त - समूह की प्रधानता है । केवल कुछ ही जनजातियाँ ऐसी हैं जिनमें 'B' रक्त की प्रधानता है जैसे, मुण्डा और भील आदि, लेकिन इन जनजातियों में

नीग्रिटो प्रजाति के कोई भी अन्य लक्षण न होकर सभी लक्षण प्रोटो - आस्ट्रेलॉयड प्रजाति से मिलते – जुलते हैं। इस आधार पर भी भारत में प्रोटो - आस्ट्रेलॉयड तत्वों की प्राचीनता होने का संकेत मिलता है।

4. यदि हम वर्तमान की समस्याओं में न उलझकर अतीत को अपने अध्ययन का आधार माने तब भी नीग्रिटो की अपेक्षा प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड तत्व अधिक प्राचीन प्रमाणित होता है। **मोहनजोदड़ो की खुदाई** में जो नरकंकाल मिले हैं, उनमें से कुछ तो प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड प्रजाति के हैं और कुछ भूमध्यसागरीय प्रजाति के, लेकिन नीग्रिटो प्रजाति का एक भी नरकंकाल नहीं खोजा जा सका। यदि नीग्रिटो यहाँ की सबसे प्राचीन प्रजाति होती तब इन अवशेषो में उनके कुछ न कुछ प्रमाण अवश्य उपलब्ध होते। उपर्युक्त समस्त प्रमाणों के अआधार पर डॉ. मजूमदार के अनुसार 'प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड' अथवा 'पूर्व - द्रविड' प्रजाति को ही भारत की सबसे प्रचीन प्रजाति मानना उचित प्रतीत होता है।

उत्तर भारत की जनसंख्या में प्रजातीय तत्व

(RACIAL ELEMENTS IN THE POPULATION OF NORTH INDIA)

प्राचीन काल से ही उत्तर भारत विभिन्न प्रजातियों के आप्रवास (iNmigration) और उनके मिश्रण का प्रमुख केन्द्र रहां है। विभिन्न मानवशास्त्रियों ने भारत की मूल प्रजाति विवाद को लेकर द्रवीडियन, निग्रिटो अथवा प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड जैसी अनेक प्रजातियों का उल्लेख किया है लेकिन सभी विद्वान इन प्रजातियों के इतिहास का आरम्भ उत्तर भारत में ही मानते है। इसके बाद यूरोप और उत्तरी एशिया से आने वाली विभिन्न प्रजातियाँ भी सबसे पहले उत्तर भारत में ही बसी और इसके बाद ही भारत के विभिन्न क्षेत्रों की ओर उनका विस्तार हुआ। इसके फलस्वरूप उत्तर भारत अनेक विशुद्ध प्रजातियों और उनकी मिश्रित प्रजातियों का एक संगम - स्थल बना रहां है। यह ध्यान रखना चाहिए कि उत्तर भारत में हम जम्मू-कश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, उत्तर पूर्वी राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, उत्तरी आसाम तथा मध्य प्रदेश के उत्तरी भाग को सम्मिलित करते हैं। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, भारत में बाहर से आकर बसने वाली अधिकांश प्रजातियाँ पंजाब के ऊपरी भागों अथवा आसाम के रास्तों से होकर भारत में प्रविष्ट हुई, इसलिए उत्तर भारत में इनका जमघट होना स्वाभाविक था। यदि हम प्रजातियों के पूर्व वर्गीकरण को ही अपने अध्ययन का आधार मान लें, तब रिजले, गुहा और मजूमदार के अनुसार उत्तर भारत में प्रजातीय तत्वों की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है :

रिजले के अनुसार

1. **इण्डो-आर्यन (Indo-Aryan)-** इस प्रजाति के व्यक्ति सबसे पहले पंजाब में बसे और इसके बाद राजस्थान, कश्मीर और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में फैल गये। आज भी उत्तर भारत की सम्पूर्ण श्रृंखला में हम जैसे-जैसे पश्चिम की ओर बढ़ते जाते हैं, हमें इस प्रजाति की अधिकता देखने को मिलती है।
2. **आर्यो- द्रवीड़ियन (Aryo-Dravidian)**- ऐसा विश्वास है कि द्रविड़ प्रजाति का मूल स्थान उत्तर भारत था लेकिन बाद में आर्यों के आक्रमणों के कारण अधिकतर द्रविड दक्षिण भारत में चले गये ! जो द्रविड़ उत्तर भारत में रहे उनका आर्यों से मिश्रण हो गया। आर्यों-द्रवीडियन प्रजाति इसी मिश्रण का फल है। उत्तर भारत में इस प्रजाति का प्रतिनिधित्व सबसे अधिक है। यह पंजाब के दक्षिण-पूर्वी भागों, उत्तर प्रदेश के अधिकांश हिस्सों, दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान, बिहार, दक्षिण-पश्चिमी आसाम और उत्तरी मध्य प्रदेश में फैली हुई है।
3. **मंगोलॉयड (Mongoloid)**- मंगोलॉयड प्रजाति का आगमन तिब्बत के ऊपरी भागों की ओर से भारत में हुआ। इसके विस्तार को रोकने के सम्भवतः सबसे अधिक प्रयत्न किये गये। यही कारण है कि इस प्रजाति के अधिकांश व्यक्ति भारत की उत्तरी सीमा के पर्वतीय प्रदेशों और पहाड़ की तलहटियों में ही बस गये। उत्तर प्रदेश की थारू जनजाति तथा असम के भोटिया इसके विशेष प्रतिनिधि हैं।

गुहा के अनुसार

1. **भूमध्यसागरीय (Mediterranean)-** गुहा के अनुसार यह प्रजाति तीन हिस्सों में विभाजित होकर भारत में आयी थी। इनमें से पहली शाखा 'प्राचीन भूमध्यसागरीय' का उत्तर भारत में कोई अस्तित्व नहीं है। दूसरी शाखा 'भूमध्यसागरीय' की विशेषताएँ गंगा की ऊपरी घाटीं में पायी जाती हैं जबकि तीसरी शाखा 'पूर्वी प्रारूप' का यहाँ की जनसंख्या में काफी योगदान है। इस शाखा के लोग पंजाब, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में सबसे अधिक फैले हुए हैं।
2. **मंगोलॉयड (Mongoloid)**- उत्तर भारत में केवल 'प्राचीन मंगोलॉयड' की पहली शाखा अर्थात् 'लम्बे सिर वाले' व्यक्ति ही पाये जाते हैं। इनका विस्तार उत्तर प्रदेश के पर्वतीय भागों और असम के सीमांत प्रदेश में सबसे अधिक है।
3. **अल्पाइन (Alpine)-** अल्पाइन, चौड़े सिर वाली प्रजाति की प्रथम शाखा है। यद्यपि उत्तर भारत में इस प्रजाति के तत्व कम हैं लेकिन फिर भी मध्य प्रदेश, पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार की जनसंख्या में इस प्रजाति के कुछ तत्व देखने को मिलते हैं। है।
4. **नॉर्डिक (Nordic)-** यह प्रजाति आर्य अथवा कॉकेशॉयड प्रजाति के सबसे निकट है। भारत में प्रवेश करने के बाद यह सबसे पहले पंजाब में बसी और यही कारण है कि पंजाब के निकटवर्ती प्रदेशों जैसे, कश्मीर, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में इसका विस्तार सबसे अधिक है।

डॉ. मजूमदार के अनुसार

1. **इंडो -भूमध्यसागरीय (Indo-Mediterranean)-** यह लम्बे सिर और लम्बी पतली नाक जैसी विशेषताओं से युक्त है, जो आर्य और भूमध्यसागरीय प्रजाति के मिश्रण से बनी है। डॉ. गुहा ने इसी को भूमध्यसागरीय प्रजाति कहा है।
2. **प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड (Proto-Australoid)**- डॉ. मजूमदार के अनुसार यह भारत की मूल प्रजाति है जिसका प्रसार उत्तर भारत से ही आरम्भ हुआ। जैसा कि पहले कहा जा चूका है। अनेक अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि मध्य प्रदेश की अधिकांश जनजातियों और बिहार के पूर्वी भागों में इस प्रजाति के तत्व पाये जाते हैं।
3. **मंगोलॉयड (Mongoloid)**- मंगोलॉयड प्रजाति का लगभग सम्पूर्ण विस्तार उत्तर भारत में ही है। उत्तर प्रदेश की थारू जनजाति इसकी विशेष प्रतिनिधि है।
4. **अल्पाइन (Alpine)-** इसके प्रसार को मजूमदार ने डॉ. गुहा के अनुसार ही स्पष्ट किया है। उत्तर प्रदेश के चौड़े सिर तथा जैतूनी रंग के सभी व्यक्ति इस प्रजाति के प्रतिनिधि हैं।

निष्कर्ष (Conclusion)

भारत का सम्पूर्ण प्रजातीय इतिहास इतनी अधिक प्रजातियों के आप्रवास और उनके मिश्रण से युक्त रहा है कि किसी भी निष्कर्ष को पूर्णतया प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। सामान्यतया भारत की प्रजातियों के जो वर्गीकरण किये गये हैं वे यहाँ के विभिन्न भागों में रहने वाले व्यक्तियों की शारीरिक विशेषताओं पर ही आधारित हैं। स्मरणातीत युगों से भारत अनेक संघर्षपूर्ण प्रजातियों और सभ्यताओं का संगम-स्थल रहा है लेकिन इन सभी प्रजातियों के बीच सात्मीकरण (assimilation) और समन्वय (synthesis) की प्रक्रियाएँ चलते रहने के कारण, किसी भी प्रजाति की विशुद्धता का दावा नहीं किया जा सकता। भारत में यद्यपि वर्ण-व्यवस्था और अन्तर्विवाह की नीति के द्वारा विभिन्न प्रजातीय समूहों की विशुद्धता बनाये रखने का प्रयत्न अवश्य किया गया, लेकिन यह व्यवस्थाएँ तब बनीं जब विभिन्न प्रजातीय समूह एक-दूसरे से काफी मिश्रित हो चुके थे। सम्पूर्ण एशिया महाद्वीप में भारत की भौगोलिक स्थिति विशेष रूप से आकर्षक होने के कारण यह विभिन्न प्रजातियों का एक लम्बे समय तक केन्द्र बना रहा। यही कारण है कि भारत को 'विभिन्न प्रजातियों का द्रवण-पात्र' (melting pot of races) तथा 'प्रजातियों का एक संग्रहालय (museum of races) जैसे विशेषणों से सम्बोधित कर दिया गया है।